सोचना, याद करना, समझना और सीखना

राजेश कुमार

भाग-II

आ लेख के इस भाग में हम याद करने, समझने और सीखने के आपसी रिश्ते तथा इन तीनों के सोचने से रिश्ते को देखने की कोशिश करेंगे। पहले भाग में हम देख चुके हैं कि सोचना हमारे दिमाग की एक सामान्य स्थिति है। यानी सोचना लगातार होता रहता है। परन्तु हम सिर्फ अपने सोचने के बारे में ही नहीं बल्कि दूसरों के सोचने के बारे में भी आश्वस्त रहते हैं। उदहारण के लिए, यदि मैं यह कहता हूं कि *'आज सब्जी मंडी में मेरे 400 रूपये खर्च हो गए'* तो यह नहीं कहता कि *'मैंने सब्जी खरीदी'* और आप भी ये सवाल नहीं करते। आपकी सोचने की क्षमता पर मेरा विश्वास ही मुझे यह आजादी देता है कि मैं आधी बात कहूं और मान लूं की आप पूरी समझ गए। श्रोता या पाठक से ऐसी अपेक्षा नहीं होने पर पता नहीं हमें एक बात को कहने के लिए कितनी बातें कहनी पड़ेंगी; और शायद फिर भी कुछ-न-कुछ छूट जाएगा। इसीलिए हम कभी नहीं कहते कि *'मैं पढ़ रहा हूं और सोच रहा हूं'* या *'मैं लिख रहा हूं और सोच रहा हूं'*, जबकि पढ़ने और लिखने में सोचना निहित है। *'मैं सोच रहा हूं'* जैसे वाक्य हम तभी इस्तेमाल करते हैं जब प्रकट रूप से कुछ और नहीं कर रहे होते हैं।

ऊपर की गई बातचीत के संदर्भ में अब इस प्रश्न को देखें: ''कहीं ऐसा तो नहीं कि जैसे पढ़ने-लिखने में सोचना निहित होने के बावजूद हम कभी यह नहीं कहते कि *'मैं पढ़ रहा हूं और सोच रहा हूं'* उसी तरह याद करने, समझने और सीखने में सोचना निहित होने बावजूद हम कभी यह नहीं कहते कि *'मैं याद कर रहा हूं और सोच रहा हूं; मैं समझ रहा हूं और सोच रहा हूं; या मैं सीख रहा हूं और सोच रहा हूं।''*? सामान्यतः जब हम याद करने, समझने और सीखने की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि इन सबकी अलग प्रक्रिया होती है, जिसके लिए किसी अलग तरह के ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है। कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है कि सोचना और ये तीनों काम एक साथ नहीं हो सकते। कहीं ऐसा तो नहीं है कि जैसे हम लगातार सोचते रहते हैं उसी प्रकार हम लगातार याद करते रहते हैं, समझते रहते हैं, और सीखते रहते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने के लिए थोड़े विस्तार से बात करने की आवश्यकता है।

सोचना और याद करना

आइए सोचें कि कितनी बातें हमें याद रहती हैं और कितनी हम भूल जाते हैं। मैं जब सुबह सो कर उठता हूं तो मुझे यह याद रहता है कि मैं कौन हूं और मैं कहां हूं। मुझे ब्रश करने और चाय पीने से लेकर नहाना, कपड़े पहनना और दफ्तर जाना याद रहता है। दफ्तर में कौन मेरा शुभचिंतक है और कौन नहीं यह भी याद रहता है। मुझे काम क्या करने हैं यह भी याद रहता है। शाम को घर लौटकर परिवार के साथ बाजार जाना, बाजार से घर लौटना, समय से खाना और सोना भी याद रहता है। यह अवश्य है कि ये सारी तथा यहां

नहीं लिखी गईं ढेरों बातें हमेशा मैं याद नहीं रखता। परन्तु जब जिसकी जरुरत होती है उसे याद कर लेता हूं। अपवादस्वरूप कुछ ऐसे मौके हो सकते हैं जब मैं किसी से मिला और मुझे उसका नाम याद नहीं आया। कुछ ऐसे लोग जिन्हें भूलने की बीमारी हो उनके लिए यह संभव नहीं होगा। परन्तु लगभग सारे लोग इस तरह की ढेरों बातें बिना किसी विशेष प्रयास के याद कर लेते हैं। याद करने की इस क्षमता के बिना अपने जीवन की कल्पना मुझे तो भयावह लगती है। आपको मेरी बात अतिशयोक्ति या हास्यास्पद लग सकती है, पर जरा कल्पना कर के देखें - किसी दिन आप सोकर जगें और आपको याद नहीं हो कि आप कौन हैं और कहां हैं; आपके सामने जो महिला खड़ी हैं वह आपकी बहन हैं या आपकी मां हैं।

हम अपने दैनिक जीवन में अनेक कार्यों को करते हुए ढेरों बातें याद रखते हैं, परन्तु हमारा ध्यान हमेशा अपने कार्यों पर होता है न कि याद रखने पर। जैसे ही याद करना एक सचेत प्रक्रिया के रूप में बदलता है यह मुश्किल हो जाता है। बातों को अपने सामान्य जीवन से काटकर कृत्रिम तरीके से याद करने की कोशिश याद करने की सामान्य प्रक्रिया को मुश्किल बना देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जैसे ही कोई दूसरा यह तय करने लगता है कि क्या याद करना है, कब याद करना है, और कैसे याद करना है यह कार्य कठिन हो जाता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में चरों (variables) को नियंत्रित करने की बाध्यता के कारण याद करने की क्षमता की जांच में अर्थहीन ध्वनि समूहों (शब्दों) और वाक्य-खण्डों का इस्तेमाल किया जाता है जिन्हें याद रख पाना मुश्किल होता है। इसका कारण याद करने की क्षमता की कमजोरी की बजाय याद किए जाने वाली बातों का कोई अर्थ नहीं बना पाना और उनमें कोई संबंध नहीं जोड़ पाना होता है। परीक्षा कक्ष में छात्रों के प्रश्नों के उत्तर नहीं याद कर पाने का कारण सारी प्रक्रिया का कृत्रिम रूप से होना होता है, जिसमें उनका ध्यान कुछ और करने की बजाय याद करने पर होता है, और जो भी वे याद करने की कोशिश करते हैं उसका ठीक-ठीक मतलब उन्हें पता नहीं होता है।

याद करने को इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह सोचने का ही एक रूप दिखाई देता है। याद करने के लिए मुझे सोचना बंद नहीं करना पड़ता है। जब भी मैं अतीत के बारे में सोचता हूं उससे जुड़ी कई बातें याद कर पाता हूं। उदाहरण के लिए, जब मैं महात्मा गांधी के बारे में सोचता हूं तो यह याद कर पाता हूं कि उनकी हत्या एक प्रार्थना सभा में गोली मारकर की गई थी। यही नहीं, जब मैं वर्तमान में जुड़ी हुई बातों और घटनाओं के बारे में सोचता हूं तो मुझे गांधी की हत्या याद आती है। जैसे आज मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में पूजा/नमाज/प्रार्थना के दौरान लोगों की होने वाली हत्या। शायद वर्तमान की बातों को अतीत से संबद्ध किए बिना उनकी समझ भी नहीं बनती। कहीं ऐसा तो नहीं कि याद करना सोचने का व्याकरणिक भूत काल है?

सोचना और समझना

समझना हमारे जीवन में लगातार चलता रहता है। अगर हम अपने आस-पास और अपने जीवन में होने वाली घटनाओं को देखें तो हम लगातार उनकी समझ बनाते रहते हैं। बच्चों को यदि कक्षा से बाहर देखें तो वो बहुत कम उलझन में दिखाई देते हैं। उन्हें पता होता है कि क्या हो रहा है और किस परिस्थिति में उन्हें क्या करना है। उलझन में ना होने का मतलब है कि वो उन परिस्थितियों को समझ रहे हैं। हां, उनकी समझ सही या गलत हो सकती है। कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि मैं कहूं कि हर व्यक्ति समझने में समर्थ होता है, और हर व्यक्ति अपने जीवन में बिना किसी विशेष प्रयास या किसी तरह के प्रशिक्षण के अलग-अलग परिस्थितियों में इसका प्रमाण देता रहता है।

समझने की प्रक्रिया में समझने वाला सक्रिय होता है। चीजें या घटनाएं अपना अर्थ स्वयं नहीं बतातीं। हम जो कुछ भी पहले से जानते हैं उसका इस्तेमाल कर उनका अर्थ निर्माण करते हैं, जिसे समझना कहा जाता है। उदाहरण के लिए, जब हम अखबार पढ़ते हैं तो खबरों में कुछ बातें ही लिखी होती हैं। बाकी बातें जो कि नहीं लिखी होती हैं उनका हम अपनी तरफ से इस्तेमाल कर खबर को समझते हैं। लेखक/वक्ता और पाठक/श्रोता के बीच चलने वाली इस प्रक्रिया के बारे में हम पहले ही बात कर चुके हैं।

ऐसा भी होता है कि हम कुछ चीजों/बातों/घटनाओं को नहीं समझ पाते हैं कि यह क्या है, यह क्या कहा जा रहा है या यह क्या हो रहा है और क्यों। ऐसी परिस्थिति में हम उलझन में पड़ जाते हैं और निर्णय नहीं ले पाते हैं। परन्तु ऐसा क्या हमारी समझने की किसी क्षमता या कौशल के अभाव के कारण होता है या उन चीजों/बातों/घटनाओं से संबंधित पूर्व अनुभव और पूर्व ज्ञान के अभाव के कारण? ऐसे में '*तर्कपूर्ण सोच*' का कोई कोर्स मेरी समझ बढ़ाने में क्या मदद कर सकता है?

हमारा सांस लेना हमेशा चलता रहता है पर हम शायद ही इस ओर कभी ध्यान देते हैं। हां, जब सांस लेने में कोई परेशानी हो तो हम उसके बारे सजग हो जाते हैं। ऐसे ही समझना हमारे जीवन में लगातार चलता रहता और हमारा ध्यान उसकी तरफ नहीं होता। हमारा सारा ध्यान उस काम पर होता है जो कि हम कर रहे होते हैं और उसमें समझना बिना किसी विशेष प्रयास के होता रहता है। हमारा ध्यान समझने पर तभी जाता है जब हम किसी चीज/बात/घटना को समझ नहीं पाते हैं। जैसा कि हम पहले ही बात कर चुके हैं कि इसका कारण संबंधित पूर्व अनुभवों और पूर्व ज्ञान का अभाव होता है। हमारे जीवन में आमतौर पर होने वाली चीजों/बातों/घटनाओं का एक इतिहास और एक संदर्भ होता है जिसका इस्तेमाल कर हम उन्हें समझते हैं। जैसे ही इनसे कटी हुई कोई चीज/बात/घटना हमारे सामने आती है हमें उसे समझने में मुश्किल आती है। छात्रों के समझने में आने वाली समस्या दरअसल मुख्य रूप से इतिहास और संदर्भ से काटकर चीजों/बातों/घटनाओं को समझाने की कोशिश का नतीजा है न कि उनकी समझने की क्षमता और कौशल की किसी कमी का। तरह-तरह के कोर्स के द्वारा बच्चों के समझने की क्षमता और कौशल को विकसित करने की कोशिश करने की बजाय हमें समझी जाने वाली चीजों/बातों/घटनाओं के इतिहास और संदर्भ की उपलब्धता को सुनिश्चित करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि आपको कोई ऐसी चीज पढ़ने को मिलती है जिसके बारे में आप कुछ भी नहीं जानते और जो कुछ भी आप पहले से जानते हैं उससे इस नई चीज का कोई संबंध नहीं बनता तो आपको समझने में मुश्किल आएगी ही। स्कूली छात्रों की एक बड़ी संख्या का दिए गए पाठों को पढ़ तो लेना लेकिन समझ नहीं पाने का कारण उनकी किसी बौद्धिक क्षमता या कौशल का आभाव नहीं है, बल्कि उन पाठों को बच्चों के पूर्व अनुभवों से जोड़ पाने में हमारी विफलता है।

आखिर में यह ध्यान देना भी आवश्यक है कि सोचना और समझना साथ-साथ ही होता है। ऐसा नहीं होता कि पहले तो मैं सोचता हूं और फिर समझता हूं, या पहले तो मैं समझता हूं और फिर सोचता हूं। किसी चीज/बात/घटना के बारे सोचना ही समझना है। हां, ऐसा जरुर हो सकता है कि मैं इनके बारे में जितनी बार सोचूं तो मेरी समझ बदलती जाए। कहीं ऐसा तो नहीं कि जैसे याद करना सोचने का भूतकाल है, वैसे ही समझना सोचने का वर्तमान काल है?

सोचना और सीखना

सीखने के अर्थ और उसकी प्रक्रिया को लेकर दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों की राय एक-सी नहीं है। दर्शन के क्षेत्र में अनुभववादी और तर्क/बुद्धिवादी तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवादी, संज्ञानवादी और संरचनावादी सीखने के मायने और सीखने की प्रक्रिया के बारे में अलग-अलग राय रखते हैं। इस बहस, जो कि एक नए आलेख का मुद्दा हो सकती है, से बचते हुए इस आलेख में सीखने शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में किया गया है जिसे अनुभवों का अर्थ समझ पाने और उनका आगे आने वाले अनुभवों में इस्तेमाल कर पाने के रूप में समझा जा सकता है।

सीखने को यदि इस अर्थ में लें तो यह कहना मुश्किल हो जाएगा कि कोई व्यक्ति एक दिन में या अपने पूरे जीवन में कितनी चीजें सीखता है। सीखने की यह प्रक्रिया तो अनवरत चलती ही रहती है। सीखने की यह प्रक्रिया तो कतई मुश्किल नहीं है। इसके लिए न तो हम कोई विशेष प्रयास करते हैं, न ही इसके लिए किसी उद्दीपन, प्रोत्साहन या पुरस्कार की जरुरत होती है। सीखना सांस लेने जैसी एक सामान्य प्रक्रिया है जिसके प्रति हम तभी सजग होते हैं जब इसमें बाधा आती है। किसी भी परिस्थिति में जैसे ही हमारा सीखना बाधित होता है हमें बोरियत होने लगती है। इसके दो संभावित कारण हो सकते हैं - या तो जो कुछ भी हो रहा है वह इतनी बार हो चुका है कि उसमें हमारे सीखने के लिए कुछ है ही नहीं, या जो कुछ भी हो रहा है उससे संबंधित कोई भी पूर्व अनुभव या पूर्व ज्ञान हमारे पास नहीं

होने के कारण हमें उसका कोई मतलब ही नहीं समझ आ रहा है। जैसे सांस रुकते ही हम बेचैन हो जाते हैं वैसे ही सीखना बाधित होते ही हमें बेचैनी होने लगती है।

5 साल के बच्चे लगभग 20 नए शब्द और उनका संदर्भों में उचित प्रयोग हर दिन सीखते हैं जो कि 18 वर्ष के आस-पास 3000 से 5000 शब्द प्रतिवर्ष हो जाती है (Anglin and George, 2000)। यह सारा सीखना बिना किसी अतिरिक्त प्रयास या अभ्यास के होता है। बच्चे सिर्फ शब्द ही नहीं सीखते, वे अपने मित्रों, शिक्षकों, माता-पिता और अन्य लोगों से व्याकरण के नियम और मुहावरे भी सीखते हैं। बच्चे सिर्फ भाषा ही नहीं सीखते बल्कि उनके अनुभव के दायरे में आने वाली अनेकों वस्तुओं, पशुओं, पक्षियों और क्रियाओं के बारे भी जानते हैं जिसे वो निश्चित रूप से इस दुनिया में आने के बाद ही सीखते हैं। वे इन सबके आपस में रिश्तों और स्वयं से इनके रिश्तों के बारे भी जानते हैं। इतना ही नहीं वे खुशी और दुःख जैसी ढेरों अमूर्त अवधारणाएं भी सीख जाते हैं। इन सबके आधार पर यह तो आसानी से कहा जा सकता है कि सीखना एक सहज और स्वाभाविक तौर पर होने वाली प्रक्रिया है जिसके लिए किसी अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं है।

सीखना यदि इतना ही आसान है तो बच्चों को स्कूलों में सीखने में परेशानी क्यों होती है? क्यों हमें बार-बार सुनने और पढ़ने को मिलता है कि हमारे बच्चे स्कूलों में पढ़ना, लिखना या गणित के सवाल हल करना सीख नहीं पा रहे हैं? सीखना आसानी से तभी हो पाता है जब हम अपने जीवन की सामान्य गतिविधियों में लगे होते हैं और हमें पता होता है कि हम क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं। याद करने और समझने की तरह सीखना भी आसानी से तब हो पाता है जब हमारा ध्यान किसी उद्देश्यपूर्ण कार्य को करने पर होता है जिसके लिए हमारे पास पर्याप्त पूर्व ज्ञान और पूर्व अनुभव हों न कि सीखने पर। जैसे ही हमारा ध्यान उद्देश्यपूर्ण कर्म से हटकर सीखने पर आ जाता है, सीखना मुश्किल हो जाता है। यदि हम चीजों को असानी से सीखना और सिखाना चाहते हैं तो हमें अपना सारा ध्यान सीखने-सिखाने से हटाकर कुछ करने पर लगाना होगा।

मनोवैज्ञानिकों के लिए सीखने के उदाहरण अधिकतर कृत्रिम ही होते हैं। इसका कारण हम मनोविज्ञान के इतिहास में देख सकते हैं। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में मनोविज्ञान को विज्ञान की श्रेणी में शामिल करने के प्रयास हो रहे थे। इसके लिए यह जरुरी था कि सीखने से जुड़े ऐसे प्रयोग किए जा सकें जो हु-ब-हु दुहराए जा सकते हों। ऐसे किसी भी प्रयोग में एक प्रयोगिक इकाई (unit of experiment) जो अपने-आप में संपूर्ण हो आवश्यक होता है। मनोविज्ञान के संदर्भ में सीखने की ऐसी इकाई का होना और उसे परिभाषित कर पाना जरुरी था। परन्तु सीखने का तो एक इतिहास होता है और सीखना संदर्भों में होता है जिसमे सीखने वाले के पूर्व अनुभवों और पूर्व ज्ञान का इस्तेमाल होता है। ऐसे में सीखने की किसी इकाई को स्थिर रूप में देख पाना और परिभाषित कर पाना संभव नहीं था। सीखने की प्रक्रिया में सोचना शामिल होता है जिसमें सीखने वाला अपने पूर्व अनुभवों और पूर्व ज्ञान का इस्तेमाल करता है। परन्तु यह सीखने वाले का सोचना ही है जो सीखने की पुर्वानुमेयता (predictability) को असंभव बना देता है। मनोवैज्ञानिकों के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि सीखने की प्रक्रिया में सोचना शामिल ना हो पाए। ऐसा तभी संभव हो सकता है जब कोई अर्थ निर्माण न हो सके। इसका समाधान मनोवैज्ञानिकों ने निरर्थक सीखने के रूप में ढूंढ़ निकाला। इस तरह के सीखने में चूंकि कोई अर्थ निर्माण नहीं होता अतः इसका कोई इतिहास और संदर्भ भी नहीं हो सकता, और इसमें किसी पूर्व अनुभव या पूर्व ज्ञान की भी कोई भूमिका नहीं होने के कारण किसी प्रकार के सोचने की गुंजाइश नहीं होती। मनोवैज्ञानिकों ने तो ऐसा करके अपने आप को वैज्ञानिक बना डाला, परन्तु छात्रों के ऊपर इसका प्रभाव बहुत दूरगामी साबित हुआ जिसकी शायद किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। निरर्थक सीखने-सिखाने की कोशिश वहां भी होने लगी जहां अर्थपूर्ण सीखने-सिखाने की पूरी संभावना और सुविधा थी। वर्तमान समय में विद्यालय में बच्चों के सीखने में विफलता का यह एक मुख्य कारण समझ में आता है। सीखने-सिखाने की मशीनी, अर्थहीन और नियंत्रित प्रक्रिया की यह समझ सीखने की व्यवहारवादी सोच के रूप में भी देखी जा सकती है जहां किसी को कुछ भी सिखा देने का दावा भी किया जाता था (Watson, 1930)।

सीखना और सोचना साथ-साथ चलने वाली प्रक्रिया है। जैसे अनुमान करने, तुलना करने, अंतर करने या निष्कर्ष निकालने को सीखने से अलग नहीं किया जा सकता, उसी तरह सोचने को भी सीखने से अलग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार ऐसा नहीं होता है कि पहले हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं और फिर उसको सीखते हैं या पहले हम सीखते हैं और फिर निष्कर्ष निकालते हैं, उसी प्रकार ऐसा भी नहीं होता कि हम पहले सोचते हैं और फिर सीखते हैं या हम पहले सीखते हैं फिर सोचते हैं। सोचने के बिना सीखना संभव ही नहीं है। यदि कुछ सीख भी लें तो वह स्थायी नहीं हो पायेगा। शायद सीखने के बिना सोचना भी नहीं होता। यदि कुछ सीखने को नहीं हो तो हम सोचेंगे क्या? लेकिन सोचने और सीखने को साथ-साथ होने वाली दो प्रक्रियाओं - जैसे तबले पर थाप का पड़ना और घुंघरू वाले पैरों का थिरकना - की तरह नहीं समझा जाना चाहिए। इस तरह की क्रियाएं अमूमन साथ होती हैं, परन्तु अलग-अलग भी हो सकती हैं। परन्तु सोचना और सीखना अलग-अलग नहीं हो सकता। एक के अभाव में दूसरा रुक जाएगा। जैसे याद करना सोचने का भूतकाल और समझना सोचने का वर्तमान है, उसी तरह कहीं ऐसा तो नहीं कि सीखना सोचने का भविष्यकाल है?

परन्तु सोचना, समझना, याद करना और सीखना सब कुछ सहज रूप से बिना किसी विशेष प्रयास के होता कैसे है? हमारा दिमाग इन सारी क्रियाओं को एक साथ सहज रूप से बिना किसी विशेष प्रयास के कैसे कर लेता है? क्या हमारा दिमाग एक बहुकार्यन (multitasking) कम्प्यूटर की तरह काम करता है या फिर एक समानांतर प्रक्रमण (parallel processing) कम्प्यूटर की तरह जो इतने सारे अलग-अलग काम एक साथ कर लेता है? सच तो यह है कि हमारा दिमाग बहुत सारे अलग-अलग काम करने की बजाय एक ही काम कर रहा होता है। सोचने, समझने, याद करने और सीखने को अलग-अलग मानसिक प्रक्रिया की तरह देखना वर्गीकरण की समस्या है। शब्दकोष में इन चारों शब्दों के अलग-अलग होने का यह अर्थ नहीं होता कि ये चारों अलग-अलग मानसिक प्रक्रियाएं हैं। मानसिक स्तर पर तो ये सभी अर्थ निर्माण की एक ही प्रक्रिया हैं जिसे जब हम अलग-अलग परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण से देखते हैं तो अलग-अलग नाम देते हैं। सोचने, समझने, याद करने और सीखने में अंतर परिप्रेक्ष्य के अंतर के कारण बाहर की दुनिया में होता है न कि हमारे दिमाग के अन्दर। वहां तो ये सभी एक ही हैं। क्या हमारे लिए यह संभव नहीं कि हम इन सबको अलग-अलग देखने, करने और सीखने-सिखाने की कोशिश करने की बजाय सिर्फ अर्थ निर्माण पर ध्यान दें? इस आलेख का अंत कबीर की एक साखी से करना उपयुक्त लगता हैः

एक हि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
माली सींचे मूल को, फूले फले अघाय।। ◆

लेखक परिचय : बतौर अकादमिक लीड, स्टरलाइट एडइंडिया फाउंडेशन, जयपुर में कार्यरत हैं।

संपर्क : 9660660661; kumarrajeshdigantar@gmail.com